P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-I*September-2014
E: ISSN NO.: 2349 – 980X

कला में बढ़ती व्यवसायिकता

शंकर शर्मा
अध्यापक
व्याख्याता चित्रकला
राजकीय महाविद्यालय खेरवाड़ा,
उदयपुर (राज.)

सारांश

कला एवं समय का सम्बंध सदा सापेक्ष रहा हैं। अनादि काल से ही मनुष्य सदैव अपने चहुर्दिश वातावरण से समन्वय बना क्रियाशील रहा है एवं अपने भाव, अभाव, पीडा, हर्ष तथा उल्लास को व्यक्त करता रहा है, वर्तमान समय में भी बदलते हुए जीवन सन्दर्भो के साथ अभिव्यक्ति की यह धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है। मनुष्य की इस अभिव्यक्ति में सदैव उसकी आत्मा प्रतिबिम्बित होती रही है, जिस पर चाहे अनचाहे बाहरी कारणों का प्रभाव भी पड़ता रहा है, लेकिन फिर भी अपने मूल में इसने सदैव एक निरछ्लता को बनाए रखा है। लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कहीं ना कहीं सृजन की इस निश्छ्ल आत्मा पर बाहरी प्रभावों का आलोपन गहरा होता दिखाई देता है। आज के सन्दर्भों में कलाकार मनुष्य की स्थिति को आत्मवादी और वस्तुवादी दोनों ही दृष्टियों से समझता है और देखता है, इस कारण जहाँ उसकी कला का एक पक्ष रचनात्मकता से जुडता है तो दूसरा भौतिकतावादी दुष्टिकोण लिये रहता है। इसी भौतिकतावादी दृष्टिकोण के चलते आज कला में रचनात्मकता एवं विशुद्ध सृजन को क्षति पहुँच रही है लेकिन दुसरी और सच्चाई यह भी है कि आज के बदलते परीवेश में कला द्वारा अर्थोपार्जन को भी सर्वथा बैमानी करार नही दिया जा सकता हैं क्योंकि कलाकार भी अन्ततः एक मनुष्य ही है, उसका भी अपना जीवन है, जीवन संघर्ष है। लेकिन यदि कलाकार कला को केवल अर्थोपार्जन का साधन ही मान लेगा तो माँग एवं पूर्ति के सिद्धान्त से परे अपनी वैचारिक कल्पना शक्ति को नया क्षितिज नही प्रदान कर पाएगा। अतः आज की इन विषम परिस्थितियों में कलाकारों को नैतिक दायित्व है कि वे ऐसे वातावरण का निर्माण करें जहाँ कला मात्र उपभोक्ता संस्कृति का हिस्सा न बनकर शुद्ध सृजन का प्रतिबिम्ब बनें एवं उसे सिर्फ व सिर्फ उसमें अन्तर्निहित शाश्वत मुल्यों की कसौटी पर ही परखा जाए।

मुख्य शब्द : अर्थोपार्जन,चेष्टा,पशुरूपी,संस्कृति

प्रस्तावना

कला का सम्बन्ध सृजन से और सृजन का सम्बन्ध जीवन से है, हमारे आसपास के समस्त विषयों, हमारी समस्याओं जिज्ञासाओं और प्रेरणाओं का स्त्रोत जीवन ही है। किसी भी सृजनात्मकता का अन्तर्निहित सम्बन्ध मनुष्य के जीवन के अनुभवों, भाव, अभाव, पीड़ा, हर्ष, तथा उल्लास से होता है और कलाकार अपनी सृजन प्रक्रिया में जीवन की ऐसी ही अनेक चुनोतियों को स्वीकारता हुआ एक पूर्ण अभिव्यक्ति देता है।

वर्तमान स्वरूप में भी कला जीवन की नवीनताओं समसामयिक सृजनात्मक सम्भावनाओं एवं गहन सम्वेदनाओं की अभिव्यक्ति का ही प्रयास है। आज यदि हम कला के वर्तमान स्वरूप का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि बदलते हुए जीवन सन्दर्भों के साथ इसमें भी बदलाव आया है जिसे हमारी जीवन–चर्या, लोक–व्यवहार एवं हमारे परस्पर सम्बंधों सभी ने प्रभावित किया है।

प्रागैतिहासिक काल के गुफा मानव से लेकर आज के पाँच सितारा परिवेश में रहने वाले तथा कथित सुसंस्कृत मनुष्य की सम्वेदनाओं, अभिव्यक्तियों एवं सृजनात्मकता को जीवन के सभी पक्षों ने प्रभावित किया है, लेकिन फिर भी चिरकाल से उसकी आन्तरिक अभिव्यक्ति की चाह एवं सौन्दर्यानुभूति की उत्कंठा अनवरत रूप से बनी हुई है।

खुरदरी गुफा दीवारों पर पाषाण से उकेरे रेखाचित्रों में मनुष्य ने जिस ऊर्जा से अपने स्व को अभिव्यक्त किया वही ऊर्जा आज की चकाचौंध रोशनी से घिरी पाँच सितारा होटलों की आर्टगेलेरियों की रेशमी दीवारों पर टंगी कृतियों में भी महसूस की जा सकती है, लेकिन इस चकाचौंध में कही–कहीं सृजन से विलुप्त होता आत्मिक प्रकाश रेशम में काटें की तरह चुभता भी है, जिसका कारण कंकरीट के जंगल में रहने वाले पशुरूपी मानव का संवेदनाहीन ह्रदय एवं वैचारिक दिवालियापन हैं। अपनी विकास लीला में मनुष्य सदैव अपने चहुँर्दिश वातावरण से समन्वय बना क्रियाशील रहा है एवं अभिव्यक्ति में अपनी आत्मा को सदैव प्रतिबिम्बित करता रहा है यद्यपि प्रायः इस क्रियाशील मनुष्य की आत्मिक

अभिव्यक्ति बाहरी कारणों से प्रभावित होती रही है तथापि उसमें एक निश्छ्लता बनी रही हैं लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कहीं ना कहीं सृजन की इस निश्छ्ल आत्मा पर बाहरी प्रभावों का आलोपन गहरा होता दिखाई देता है।

वर्तमान युग में औद्योगिकीकरण तकनिकी प्रगति तथा वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य जीवन के सभी पक्षों को पूर्ण रूप से प्रभावित किया है, मनुष्य के जीवन से जुड़ी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर वस्तु भी इन बाहरी प्रभावों के प्रभाव से अनछुई नहीं रही है, कला भी इस दृष्टि से अपवाद नहीं है वह भी कहीं ना कहीं अपने मूल भावना में इन बाहरी प्रभावों के आक्रमण से आहत हुई है, पथभ्रमित हुई है। यह सत्य है कि कला की व्याख्या उन सामान्य वस्तुओं से करना उचित नहीं है, जो बाहरी प्रभावों से प्रभावित होती हो क्योंकि कला तो केवल एक रचनात्मक चेष्टा है और सौन्दर्य प्रमुख दृष्टि है लेकिन कला की इस रचनात्मकता का भी समय के साथ एक खास रिश्ता है जो ''अपने समय के साथ अपने समय से पहले समय के साथ और आने वाले समय के साथ यानि अतीतः वर्तमान एवं भविष्य ..... इनकी लगातार उपस्थिति का बोध या इनमें से किसी एक की अति उपस्थिति का बोध निर्धारित करता है यह रिश्ता बतलाता है कि एक कलाकार अपने समय के मनुष्य की स्थिति और उसकी आधुनिकता को अपनी रचनाओं में किस तरह ग्रहण और परिभाषित करता है।''[1]

आज के सन्दर्भों में कलाकार मनुष्य की स्थिति को आत्मवादी और वस्तुवादी दोनों ही दृष्टियों से समझता हैं और देखता है, इस कारण जहाँ उसकी कला का एक पक्ष रचनात्मकता से जुड़ता है तो दूसरा भौतिकतावादी दृष्टिकोण लिये रहता है। जहाँ तक इन दोनों पक्षों में समन्वय बना रहता है कला का सृजन से सम्बन्ध भी बना रहता है। लेकिन आज के दौर की विडम्बना यह है कि इसका दूसरा पक्ष जो मनुष्य की भौतिकतावादी संस्कृति से जुड़ा है अधिक हावी होता जा रहा है।

भौतिकतावादी दृष्टिकोण के चलते कलाकृति में रचनात्मकता का स्थान गौण होता जा रहा है, कला में व्यवसायिक संस्कृति के आवेग से विशुद्ध सृजन को बहुत क्षति पहुँची है इससे कलाकारों में कला के प्रत दृष्टिकोण में तो परिवर्तन आया ही है साथ ही दर्शकों में विशुद्ध सौन्दर्य दर्शन की रूचि को भी गहरा आघात लगा हैं।

भौतिकतावादी संस्कृति में जहाँ कला की मूल भावना आहत हुई है वहीं कलाकारों में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की एक न खत्म होने वाली होड़ प्रारंभ हो गयी है। आज एक छोटे से कस्बे से लेकर मेट्रोपोलिटन सिटी में रहने वाले कलाकार तक सभी का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लक्ष्य कला के द्वारा अर्थोपार्जन रह गया है यद्यपि इस भीड़ में अपवाद स्वरूप कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जो विशुद्ध आत्मिक आनन्द हेतु सुजन की ज्योति जगाए कला कर्म में मग्न हैं।

कला तथा सृजन में भौतिकतावादी दृष्टिकोण को पल्लवित करने में कला संग्रहालय कला दीर्घाएँ एवं मीडिया सभी अपना रोल बखूबी निभा रहे हैं। आज कला को पूंजी निवेश का क्षेत्र बना दिया गया है। जहाँ पूंजी निवेश करना सबसे लाभप्रद है कलाकार भी इस तंत्र का हिस्सा बनकर इसमें अपना सक्रिय सहयोग दे रहा है। आज कलाकार की कृति का आकलन उसके वैशिष्ट्य से हो रहा है। ''आज सर्वाधिक प्रचारित कलाकार की कृति सबसे मंहगी और अनजाने कलाकार की कृति सस्ती है यानी गुणवत्ता से अधिक वैशिष्ट्य है''[2] कलाकार के इस वैशिष्ट्य को प्रमाणित कर रही है वे कला दीर्घाएँ जिनके लिये कला मूल्यों से अधिक मायने रखता है कमीशन,। ये दीर्घाएँ कलाकारों को प्रायोजित कर रही है प्रश्रय दे रही हैं दिन–प्रतिदिन ये व्यावसायिक गेलेरिया कुकुरमुत्ते के समान पनप रही हैं। महानगरों की स्थिति तो यह है कि लोग अपने घरों के बैठक कक्षों को गेलेरियों में बदल रहे हैं मुम्बई में तो एक महिला ने अपने समूचे फ्लेट को ही गेलेरी बना दिया है जिसे वह कला दुकान की तरह इस्तेमाल करती है राजधानी दिल्ली में भी स्थितियाँ कुछ ऐसी ही हैं यहाँ पूरा हौज खास का बाजार गेलेरी नाम वाली ऐसी दुकानों से भरा है जिनके खास खरीददार भी हैं और चित्रकार भी।

इन कला व्यवसाईयों की मानसिकता यह रहती है कि बाजार में क्या अधिक पसंद किया जाता है पैसा किस दिशा से अधिक उपलब्ध हो सकता है दर्शक भी आजकल इन दुकानों में कलाकारों के स्तर की पहचान उसके चित्र पर लगे ''प्राईज़ टैग'' से करने लगा है। इन स्थितियों के चलते कलाकार भी अपने को एक सीमित दायरे में बाँधते जा रहे है। और अपने ''पॉपुलर ब्रांड'' के आधार पर ही अपनी कला की दिशा तय कर रहे हैं जो बिकता है वह बनता है के जुमले को साकार करते यह कलाकार रचनात्मकता के अपने मूल पथ से दूर हटने को आतुर दिखाई दे रहे हैं।

दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ती इन कलादीर्घाओं के अधिकांश संरक्षक व संचालक शुद्ध व्यवसायी हैं जो कलाकारों की प्रदर्शनियाँ लगवाने के नाम पर सौदा करते हैं, उनकी कृतियों की बिक्री में से कमीशन लेते हैं और बड़ी सफाई से कलाकारों के लिये पुरस्कार फैलोशिप एवं विदेश यात्राओं की व्यवस्था भी कराते हैं। कलाकार इन्हें कला का संरक्षक मानते हैं। दुःखद तो यह है कि अनेक बड़े कलाकार ऐसे व्यवसाईयों को पोषित करते हैं और उन्हें हर सम्भव सहायता देकर उपकृत करते हैं जबकि सच्चाई यह है कि ये व्यवसायी कला का जितना अहित करते हैं उतना कोई और नहीं करता हैं। बड़े महानगरों की भाँति आजकल उन पर्यटक स्थलों पर भी नित नई कला वीथिकाएँ पनप रही है जहाँ या तो पूर्व में कोई आर्ट स्कूल रहा है या जहाँ पर महाविद्यालयी स्तर पर कला शिक्षा दी जा रही है यहाँ हर वर्ष बड़ी संख्या में नए कलाकारों की फौज तैयार हो रही है, इनमें अधिकतर वह युवा वर्ग है जो या तो अच्छी पारिवारिक पृष्ठभूमि से जुड़े हैं या वे हैं जो अपनी कला द्वारा अत्यल्प समय में प्रसिद्धि के शिखर तक पहुँचना चाहते हैं। इन छोटे कस्बों एवं शहरों की कला दीर्घाओं में ऐसे युवा कलाकारों की ताजा कृतियाँ प्रदर्शन एवं बिक्री हेतु असीमित मात्रा में सदैव उपलब्ध रहती हैं, संख्या की दृष्टि से प्रतिवर्ष यह कलाकार सैंकड़ों कृतियाँ सृजित करते हैं जिनका मूल उद्देश्य होता है, ''अर्थोपार्जन''।

यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि यदि इसी प्रकार युवा कलाकारों में कला को लेकर भौतिकतावादी

दृष्टिकोण हावी होता रहा तो सृजन में रचनात्मकता का उद्देश्य बैमानी हो जाएगा लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी है और वह यह कि आज के बदलते परिवेश में कला द्वारा अर्थोपार्जन को भी सर्वथा बैमानी करार नहीं दिया जा सकता है क्योंकि ''किसी भी समाज की अर्थव्यवस्था का प्रभाव कला और कलाकार दोनों पर पड़ता ही है। कलाकार भी एक आम व्यक्ति की तरह सामाजिक प्राणी ही है एवं उसकी भी अपनी इच्छा और आकांक्षाएँ होती हैं वह भी एक सामान्य व्यक्ति की ही तरह सम्पन्न बनने का ख्वाब देखता है उसके लिए कभी कभी वह अपनी कला के साथ समझौता कर अर्थ प्राप्त करना चाहता है।''[3] कलाकार के दृष्टिकोण से यदि देखें तो यह सर्वथा अनुचित भी नहीं है क्योंकि कलाकार का भी अपना जीवन है जीवन संघर्ष है। यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि वह किस हद तक अर्थोपार्जन के लिये सक्रिय होता है यदि वह उसके साथ शुद्ध सृजन करता है तब तो ठीक है लेकिन यदि वह कला को केवल अर्थोपार्जन का साधन ही मान लेता है तो उसकी सृजन क्षमता एक सीमा में बंध कर रही जाएगी और वह केवल भौतिकतावादी विचारधारा में फँसकर मांग व पूर्ति के सिद्धान्त से परे अपनी वैचारिक कल्पना शक्ति को नया क्षितिज प्रदान नहीं कर पाएगा।

कला के व्यावसायीकरण के लिये जितनी कला के कलाकारों की भौतिक विचारधारा जिम्मेदार है उससे कई अधिक जिम्मेदारी उस सभ्य सुसंस्कृत धनी वर्ग के ग्राहकों की है जो किसी प्रसिद्ध कलाकार की महंगी कलाकृति को खरीदना या तो अपना स्टेटस सिम्बल मानते है। या किसी कृति को खरीदने का चुनाव इसलिये करते हैं कि उसका रंग उनके ड्राईंग रूम की दीवार से ''मैच'' करता है।

भौतिकतावाद के इस दौर में कलाकार आज ''सृजनात्मक क्षमताओं और वैयक्तिक दृष्टियों से बनी निर्मितियों के बदले उन प्रचलित विषयों की ओर उन्मुख हो रहा है जिनकी या तो मांग है या जिनकी पूर्ति कर वे अपने कलाकार होने को प्रमाणित करसके या फिर भौतिक रूप से समृद्ध होने का सुख ले सकते हैं''[4] यकीनन इन सभी परिस्थितियों में कलाकारों को आत्मिक सुख की कमी खलती होगी और वे स्वयं को अन्दर से टूटा हुआ महसूस करते होंगे यह एक डरावना सच है। लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्थिति यही है कि कलाकार और उपभोक्ता समाज के मध्य 'बाजार' एक पुल का कार्य कर रहा है और कलाकार उपभोक्ता समाज की आवश्यकता के लिये उत्पादन करने में लगा है इन परिस्थितियों में आज स्वयं कलाकार को यह महसूस करना होगा कि ''जहाँ बाजार हाता है वहाँ उत्पादन तो हो सकता है लेकिन कृति नही बन सकती''[5]

यद्यपि ऐसा भी नहीं है कि कला कृतियों की अतिशय उत्पादकता सदैव ही उसके गुणात्मक पहलू को प्रभावित करती हो लेकिन इस उत्पादन में अन्तर्निहित मूल्यों के साथ समझौता नहीं होना चाहिये जैसे कि ''मध्यकालीन युग में भी कलाकारों ने अपने आश्रयदाताओं की माँग पर कलाकृतियाँ निर्मित की थीं और संख्यात्मक दृष्टि से भी बहुसंख्य कलाकृतियों का निर्माण उस समय हुआ था लेकिन फिर भी कलात्मकता की दृष्टि से वे कृतियाँ परिपूर्ण है क्योंकि कलाकृतियों के सृजन के पीछे जो भावना थी उसमें एक निष्ठा थी, एक सम्मान था''[6] एक समर्पण था, जो आज नहीं दिखाई देता है। क्योंकि आज कला कर्म मानवीय क्रिया व्यापार की जगह व्यावसायिक क्रिया व्यापार बनता जा रहा है, यह घड़ी उन कलाकारों के लिये बड़ी दुःखद है जो अपनी कला में रचनात्मकता या आत्मिकता को महत्त्व देते हुए स्वत्व की शर्तों पर सृजन में लगे हुए हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कलाकार अपने अन्तस्फुर्त भावों की अभिव्यक्ति को बाहरी प्रभावों से मुक्त रखते हुए व्यक्त करे। वह अपने कर्म में, अपनी अर्न्तदृष्टि, अपनी कल्पना, अपने चिन्तन को महत्त्व देते हुए समकालीन समाज की जीवन व्यवस्था को समझे उसकी जरूरतों को समझे और एक एसी कला का निर्माण करे जो उपभोक्ता समाज की आवश्यकता की अपेक्षा समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निवर्हन करे, एवं व्यावसायिकता एवं भौतिकता की चकाचौंध में उसकी कला मात्र उपभोग एवं विक्रय की वस्तु न बने।

आकांक्षाओं चुनौतियों और उलझनों के इस दौर में आज कलाकारों के लिये आत्ममंथन की घड़ी है। उन्हें यह भी स्वीकारना होगा कि वह केवल स्वार्थी होकर उपभोक्ता संस्कृति का हिस्सा बनकर, भोगी एवं विलासी जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। हमारी महान कला परम्परा में हमारे पूर्वजों ने कला में जिस आत्मिकता, रचनात्मकता एवं सृजनशीलता को जीवित रखा है, उसका उत्तरदायित्व अब उनका हैं उन्हें ऐसे वातावरण का निर्माण करना है, जहाँ कला को सृजन एवं मूल्यों की कसौटी पर परखा जाए न कि भौतिकता की कसौटी पर।

संदर्भ सूची

1. प्रयाग शुक्ल (1978) कला समय समाज ल०क०अ० नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पे०न० 1
2. शैल चोयल (1995) समसामयिक कला की वर्तमान स्थिति ओर भविष्य रा०ल०क०अ० जयपुर, पे०नं० 25
3. समकालीन कला (2002) अंक 22, ल०क०अ० प्रकाशन,पे०न० 22
4. समकालीन कला (2002) अंक 21, ल०क०अ० प्रकाशन,पे०न० 26
5. समकालीन कला (2002) अंक 22, ल०क०अ० प्रकाशन, मंजीत बाबा (साक्षात्कार)